International Journal of Education and Science Research Review
ISSN 2348-6457
www.ijesrr.org August- 2019, Volume-6, Issue-4 Email- editor@ijesrr.org

मेरठ मण्डल के ग्रामीण औद्योगिक इकाईयों की समस्याएँ

Dr.G.B.Kayshyap
Retd. Reader & Head
Department of Economics
SSVPG College Hapur

Smt. Urmila
Research Scholar
Department of Economics
Monad University,Hapur, U.P,India

अवधारणा

स्वतंत्रता से पहले भारत का आर्थिक विकास आधुनिक दृष्टिकोण से अत्यन्त निम्नस्तरीय था, उद्योगों की संवृद्धि दर बहुत ही कम थी तथा औद्योगिक संरचना का ढांचा निम्न स्तर का था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार के समक्ष तेज औद्योगिक विकास की समस्या विकराल रूप में खड़ी थी। जिनका एक मुश्त समाधान नहीं किया जा सकता था परन्तु योजनाबद्ध तरीके से इन समस्याओं को सुलझाया जा सकता था। इन सब बातों को देखते हुए योजना काल में भारत में औद्योगिक विकास के लिए अनेक नीतियाँ तैयार की गई। नीतियाँ योजना काल में काफी हद तक सफल भी रही। वर्तमान समय को देखा जाये तो भारत ने योजना काल में तेजी से औद्योगिक प्रगति की है और आज भारत औद्योगिकरण की चरम सीमा की आर अग्रसर है। जहाँ भारत आज बड़ी मत्रा में उच्चकोटि की तथा उच्च तकनीक वाली औद्योगिक वस्तुएँ बना सकने में सक्षम है वहीं दूसरी ओर ग्रामीण इलाकों में स्थपित उद्योग आज भी अनेक समस्याओं का सामना बड़े पैमाने पर कर रहे हैं। इन समस्याओं के बारे में निरन्तर अध्ययन एवं विश्लेषण किये जाने की आवश्यकता है ताकि उनके निराकरण के लिए उपयुक्त सुझाव दिये जा सके। इन उद्योगों के समक्ष कुछ आधारभूत समस्याएँ हैं जिनको हल किये बिना इनकी सफलता की आशा करना निरर्थक है। भारत वर्ष में वृहद उद्योगों की तुलना में लघु एवं कुटीर उद्यागों के समक्ष समस्याएं अधिक विकराल रूप में हैं, वास्तव में यदि इन समस्याओं का उचित एवं समय से निराकरण न हो पाता है तब यह समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है तथा इन उद्योगों के सम्मुख इन समस्याओं के कारण रूग्णता आ जातीहै। इन सब तथ्यों का ध्यान रखते हुए भारतीय ग्रामीण उद्योगों पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है तभी देश निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा।

वित्तीय साधनों की कमी

ग्रामीण उद्योगों में वित्त एक प्रमुख समस्या है। वित्त की आवश्यकता बीज–पूंजी पुर्नवित्त की सुविधा, कार्यशील पूंजी आदि में हर समय होती रहती है। लघु उद्योगों की तुलना में कुटीर उद्योगों की स्थिति अधिक खराब है इन इकाईयों का आधार काफी कमजोर होता है क्योंकि इनकी स्थापना साझेदारी अथवा एकल स्वामित्व के आधार पर की जाती है। इन उद्योगों के समक्ष स्थिर पूंजी के साथ–साथ कार्यशील पूंजो का अभाव लगातार बना रहता है। पूंजी के अभाव के कारण ये उद्योग पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल, औजार, मशीनें, श्रम आदि समय पर नहीं खरीद पाते हैं। प्रायः देखने में आता है कि लघु उद्योग तैयार तो हो जाता है परन्तु उनकी रूग्णता का मुख्य कारण वित्तीय समस्या होती ह।

ग्रामीण उद्यमियों की जोखिम पूंजी सीमित होती है और इसलिए व्यापारिक बैंक उन्हें दीर्घकालीन ऋण देने में रूचि नहीं लेते। बाध्य होकर उन्हें निजी सूत्रों से ऊँची ब्याज दर पर ऋण लेना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि इनकी उत्पादन लागत बढ़ जाती है। फिर भी कछ लघु उद्योग ऐसे हैं जो पर्याप्त प्रतिभूति दे सकते हैं।, उन्हें विशेष वित्तीय संस्थानों से दीर्घकालीन ऋण मिल जाता है और कभी–कभी वाणिज्यिक बैंकों से कार्यशील पूंजी के लिए नकद ऋण भी प्राप्त हो जाता है। किन्तु भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था में लघु उद्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इन्हें मिलने वाली ऋण की कुल राशि भारतीय उद्योगों की कुल राशि का बहुत छोटा अंश है। अतः लघु उद्योगों के प्रति वित्तीय संस्थानों के दृष्टिकोण में वास्तविक परिवर्तन आवश्यक है। किसी भी उद्यम की उधार–पात्रता का निर्णय परिसम्पत्ति से प्राप्त होने वाले मूल्य के आधार पर न करके इस दृष्टि से किया जाना चाहिए कि बड़े पैमाने में उद्योगों की तुलना में छोटे उद्योगों को पर्याप्त वित्त की व्यवस्था करने में अधिक कठिनाईयाँ भुगतनी पड़ती है। यद्यपि इनकी आवश्यकता अपेक्षाकृत थोड़ी हैं फिर भो इन्हें कठिनाईयाँ उठानी पड़ती हैं। इनमें से कुछ कठिनाईयाँ तो सामान्य प्रकार की हैं, जो साधनों की सामान्य रूप से कमी या विशिष्ट संस्थाओं के अभाव के कारण उत्पन्न होती हैं लेकिन कुछ कठिनाईयाँ ऐसी भी होती हैं जो इस प्रकार के उद्यमों के सम्बन्ध में ही उठती हैं। संक्षेप में यह कठिनाईयाँ इस प्रकार हैं–

1. भारत में पूंजी बाजार का इस प्रकार से विकास हुआ है कि यह बड़े पैमाने के उद्योगों की आवश्यकताओं हेतु अधिक उपयुक्त बैठता है। नये शेयरों का निर्गमन, पुराने शेयरों का क्रय–विक्रय तथा उद्योगों की स्थापना और उनका

संचालन आदि कार्य एक दूसरे से इतने गुंथ गये हैं कि केवल बड़े पैमाने के उद्योग ही पूंजी बाजार की विभिन्न संस्थाओं से लाभ उठा सकते हैं।

2. एक अन्य कठिनाई मुद्रा बाजार का विकास इस प्रकार से हुआ है कि सामान्यता रूपये की सुरक्षा का सवाल पहले आता है और उद्योगों का उत्पादक स्वरूप गौण रह जाता है। इस अर्थ में छोटे पैमाने के उद्योगों की उधार पात्रता बहुत गिर जाती है। यही कारण है कि बड़े पैमाने के उद्योगों को जो अच्छी जमानत दे सकते हैं, उन्हें सरलता से उधार मिल जाता है, ब्याज की दर भी कम देनी पड़ती है।
3. अल्पकालिक कार्यशील पूंजी के क्षेत्र में इन उद्योगों को पर्याप्त वित्तीय समर्थन नहीं मिल पाता। न केवल पर्याप्त जमानत का अभाव ही इनके आड़े आता है, अपितु इनकी धन की थोड़ी आवश्यकता भी एक कमजोरी सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए अधिक साधन वाले बैंक बड़ी धनराशि और बड़े–बड़े ग्राहकों से लेन–देन को अधिक उत्सुक रहते हैं।
4. इन उद्योगों को अक्सर ऐसे वित्तीय स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है जिनका उत्पादन कार्यों से कोई लगाव नहीं होता। अतः ऐसे उद्योगों की ऊँची ब्याज दर और कड़ी भुगतान शर्तों के रूप में अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। इन्हीं बातों की वजह से इन उद्योगों के वित्त की पूर्ति के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने 1960 में छोटे उद्योगों की सहायता के लिए एक उधार गारण्टी योजना जारी की है। इस योजना के अनुसार रिजर्व बैंक गारण्टी संस्था का दायित्व निभाता है और उधार लिये गये ऋण पर ब्याज एवं मूलधन की वापसी का दायित्व स्वयं वहन करता है। इस योजना का ईमानदारी और ऋणपात्रता का सराहनीय रिकार्ड रहा है। इसके अतिरिक्त ऋण सुविधाएँ देने के लिए भारतीय लघु उद्योग क्षेत्र के लिए विकास बैंक की स्थापना अप्रैल, 1990 में भारत सरकार द्वारा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक व रिजर्व बैंक की सहायता से की गयी। यह बैंक लघु उद्योग क्षेत्र के लिए शीर्ष संस्था के रूप में कार्यरत हैं तथा लघु उद्योगों को अनेक प्रकार की वित्तीय सहायता जैसे बीज–पूंजी, इक्विटी पूंजी, पुर्नवित्त की सुविधाएँ व कार्यशील पूंजी आदि प्रदान करता है। इसके बावजूद और ऋण सुविधा के विस्तार के होते हुए भी अधिकतर कारीगर एवं शिल्पी, विशेष कर वे जो समाज के कमजोर वर्गों से हैं और छोटे कस्बों और ग्रामों में रहते हैं, अपनी ऋण आवश्यकताओं के लिए उधार प्राप्त नहीं कर पाते।

कच्चे माल की कमी

ग्रामीण उद्योग कच्चे माल के लिए स्थानीय स्रोतों पर निर्भर है। इन उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या कच्चे माल को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने की है। आयातित अथवा नियंत्रित माल की दशा में यह कठिनाई और अधिक बढ़ जाती है। प्रायः यह देखने में आता है कि लघु उद्योगों हेतु निर्धारित की गई मात्रा उन्हें नहीं मिल पाती है और यदि वह उन्हें मिलती भी है तो अनेक औपचारिकताओं के पश्चात ऊँचा मूल्य चुकाकर प्राप्त किया जाता है। फलस्वरूप उनका उत्पादन मूल्य बढ़ जाता है और व अपने आर्डरों का माल समय पर तैयार नहीं कर पातें। इन उद्योगों की प्रमुख कठिनाई एक यह भी है कि इनके पास पूंजीगत साधन सीमित हैं जिनके कारण ये बड़े उद्योगों की तरह थोक मात्रा में कच्चा माल नहीं खरीद पाते। फुटकर रूप में कच्चा माल खरीदने पर इन्हें ऊँची कीमत देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त कच्चे माल की प्राप्त लागत भी बड़े उद्योगों की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि बड़े उद्योग प्रायः औद्योगिक बस्तियों, मुख्य मार्गों एवं रेल मार्गों पर स्थित हैं तथा ग्रामीण उद्योग इन क्षेत्रों से दुरस्थ स्थित होते हैं जिनको माल प्राप्त करने हेतु अतिरिक्त व्यवस्था करनी पड़ती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव माल प्राप्त करने की लागत पर पड़ता है। कुटीर उद्योग कच्चे माल के स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर रहते हैं। ये व्यापारी इस शर्त पर माल उपलब्ध करवाते हैं कि तैयार माल उन्हीं को बेचा जाये। इस तरह कुटीर उद्योग दोहरे शोषण का शिकार होते हैं। लघु उद्योगों की इस प्रबल समस्या का देखते हुए सरकार ने समय–समय पर कदम उठाये लेकिन फिर भी यह उद्योग कच्चे माल की समस्या से ग्रसित हैं। उत्तर प्रदेश में लघु उद्योगों को उचित मूलय पर एवं मानकीकृत माल की सप्लाई हेतु उ0 प्र0 लघु उद्योग निगम कार्यरत हैं जो इन उद्योगों को समय–समय पर कच्चे माल की आपूर्ति करता है परन्तु प्रदेश का ग्रामीण उद्योगों की कच्चे माल से सम्बन्धित कुछ समस्याएँ निम्नवत हैं–

1. स्थानीय व्यापारियों द्वारा उद्योगों को घटिया किस्म का माल उपलब्ध कराया जाना क्योंकि अच्छी किस्म का माल बाहर हस्तान्तरित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए जूता निर्माण उद्योगों में अच्छा चमड़ा तो निर्यात कर दिया जाता है अथवा बड़ी निर्यात इकाईयों द्वारा क्रय कर लिया जाता है। फुटकर विक्रय हेतु घटिया किस्म का चमड़ा रह जाता है जिसे लघु उद्योगों को खरीदना पड़ता ह।
2. कम मात्रा में क्रय करने के कारण इनको ऊँचा मूल्य देना पड़ता है। लघु उद्यम अपनी आवश्यकतानुसार माल की मात्रा क्रय करते हैं जो कि बड़े उद्योगों की अपेक्षाकृत न्यूनतम मात्रा होती है।

3. कुछ लघु उद्योग कच्चे माल हेतु बड़े उद्योगों पर निर्भर होते हैं जैसे हथकरघा के लिए मिलों का सूत उन्हें समय पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता है। आयातित कच्चा माल प्राप्त करने में तो इन उद्योगों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है और प्रायः ये निर्धारित मात्रा आयात करने में असमर्थ रहते हैं।
4. सरकार द्वारा कच्चा माल आवंटित करते समय इन उद्योगों का पर्याप्त मात्रा में माल आवंटित नहीं किया जाता है और न ही इनको उत्तम प्रकार का माल मिल पाता है।
5. आयातित कच्चे माल के सम्बन्ध में लघु उद्योगों के समक्ष महत्वपूर्ण कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। आयात के सम्बन्ध में अनेक औपचारिकताएँ भी पूर्ण करनी पड़ती ह जिसे लघु उद्योग पूरा करने में लाल फीताशाही में उलझ कर रह जाता है।
6. इन उद्योगों के पास पूंजीगत साधन अत्यन्त सीमित हैं जिसके कारण ये थोक मात्रा में कच्चा माल न खरीद कर फुटकर भाव में खरीदते हैं जिस कारण इसकी लागत अधिक होती है।

तकनीकी ज्ञान का अभाव

ग्रामीण उद्योगों में तकनीक की समस्या प्रमुख है। ये उद्योग परम्परागत तकनीक को ही आज भी काम में ला रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप इनका उत्पाद आधुनिक गुणवत्ता का नहीं होता तथा उनकी लागत भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपयोगिता को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि उत्पादन तकनीकी का आधुनिकीकरण किया जाए। पुराने औजारों एवं प्राचीन विधियों के प्रयोग के द्वारा ये उद्योग नवीन डिजाइन की वस्तुओं का उत्पउदन नहीं कर सकेंगे। अतः उनकी निर्माण विधि में आधुनिक यंत्रों एवं यांत्रिक शक्ति का उपयोग शामिल किया जाना चाहिए। निर्माण हेतु वर्तमान में मशीनीकृत औद्योगीकरण के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित श्रमिकों की आवश्यकता होती है। भारत में शिक्षा का स्तर निम्न होने तथा प्रशिक्षण संस्थाओं के अभाव के कारण कुशल और प्रशिक्षित श्रमिकों की समस्या विद्यमान है।

इन उद्योगों के पास बड़े उद्योगों की तरह पर्याप्त मात्रा में शोध तथा अनुसन्धान केन्द्र स्थापित नहीं होते। इन उद्योगों की नई तकनीक की विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। तकनीकी परामर्शकर्त्ता के अभाव के कारण ये उद्योग सही मशीनों का चुनाव नहीं कर पाते और भविष्य में इन्हें हानि का वहन करना पड़ता है। इन उद्योगों द्वारा परम्परागत तरीके से उत्पादित माल की मांग बाजार में बहुत कम की जाती है। इनका उत्पादित माल लम्बे समय तक न बिक पाने के कारण या तो खराब हो जाता है या फैशन से परे हो जाता है जो बाद म कम दामों में बेचना पड़ता है

उत्पादित वस्तु बाजार में अन्य उत्पादों के समक्ष टिकी रहे इसके लिए आवश्यक है कि उसमें नवीनता, आधुनिकता व उपभोक्ता की संतुष्टि करने वाले गुण होने चाहिए। अतः उत्पादन कुशलता में वृद्धि करने ओर नए पदार्थों के निर्माण को प्रोत्सहन देने के लिए तकनीकी सहायता की महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस समय लघु स्तर की इकाईयों को तकनीकी परामर्श के साथ–साथ कच्चे माल की प्राप्ति एवं सहायता देने के लिए कुछ संस्थाएँ विद्यमान हैं। इनमें केन्द्रीय लघु उद्योग संगठन, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, अखिल भारतीय हथकरघा एवं हस्तकला मंडल, सीडो के देश भर में फैले हुए लघु उद्योग सेवा संस्थान, शाखा सेवा संस्थान तथा प्रसार केन्द्र राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, जिला उद्योग केन्द्र आदि विद्यमान हैं। ये संस्थाएँ अपने केन्द्रों के माध्यम से तकनीकी योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की व्यवस्था तथा तकनीकी समस्याओं के सम्बन्ध में परामर्श देती हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि उत्पादन सुविधाओं का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा रहा है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में स्थान बनाने हेतु लघु उद्योगों को नवीनतम उच्च कोटि के तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है। यही कारण है कि भारतवर्ष के उद्योगों में निर्मित उत्पाद अन्य देशों के उत्पादों के सम्मुख ठहर नहीं पाते। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण चीन में निर्मित इलेक्ट्रानिक उत्पाद यहाँ के उत्पादों से अपेक्षाकृत अच्छे माने जाते हैं। यही दशा जापान में निर्मित उत्पादों की है वे भी इन उत्पादों से बेहतर माने जाते हैं।

उत्पादित वस्तुओं के विपणन की समस्या

इन उत्पादकों को मण्डियों में भी प्रायः माल बेचने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। माल को बेचने के लिए सहकारी संस्थओं व अन्य प्रकार की सुविधाओं के अभाव में कारीगरों को प्रायः अपना माल साहुकारों के हाथ बेचना पड़ता है। साधारणतः कारीगर कच्चा माल, वित्त आदि आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए साहुकार पर निर्भर रहता है फिर भला वह किस प्रकार साहुकार को अप्रसन्न कर सकता है। माल के लिए जो कुछ भी उसे मूल्य मिलता है, उसे चुपचाप स्वीकार करना पड़ता है और यदि वह मण्डी में जाकर सीधे उपभोक्ताओं को बेचने के लिए स्वतंत्र होतो भी उसे विशेष लाभ नहीं हो पाता। एक तो उसका बहुत सा समय माल बेचने में नष्ट हो जाता है दूसरे साधनहीन होने के कारण उसे माल किसी भी दाम में बेचना पड़ता है उसमें सौदाकारी क्षमता बहुत कम होती है। वह यह जानता है कि

माल न बिकनेके कारण उसे भुखमरी का सामना करना पड़ सकता है आर जल्दबाजी में उचित मूल्य वह प्राप्त नहीं कर पायेगा परन्तु गरजमंद हो जाने के कारण वह अपने माल को कम मूल्य पर बेचेने को विवश हो जाता है।

तालिका संख्या 1.1

मेरठ मण्डल में क्रय–विक्रय सहकारी समितियाँ

वर्ष	संख्या	सदस्य संख्या	वर्ष में लेनदेन की गई वस्तुओं का मूल्य (हजार रू0 में)
2013–14	35	46851	57005
2014–15	35	46932	46525
2015–16	35	48310	52067
2016–17	35	49120	55680

तालिका संख्या 1.2

जनपदवार विवरण वर्ष 2015–16

ज्नपद	संख्या	सदस्य संख्या	वर्ष में लेनदेन की गई वस्तुओं का मूल्य (हजार रू0 में)
1. मेरठ	4	14176	19850
2. गाजियाबाद	3	15341	8835
3. बुलन्दशहर	9	10302	6746
4. गौतमबुद्धनगर	17	281	1826
5. बागपत	2	8210	14810
योग	**35**	**48310**	**52067**

स्रोतः सांख्यिकी पत्रिका, मेरठ मण्डल, वर्ष 2017, पृ0 सं0 8

उपरोक्त तालिकाओं द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि सम्पूर्ण मण्डल में क्रय विक्रय सहकारी समितियों को संख्या पर्याप्त नहीं है। वर्ष 2013–14 में 2015–16 तक इनकी संख्याओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और यदि लेन–देन की बात की जाये तो वष 2014–15 में यह 57005 (हजार) से घटकर 52067 (हजार) पर आ गया और वर्ष 2015–16 में इन समितियों का लेन–देन कुछ हद तक बढ़कर 52067 (हजार) हो गया, जो वर्ष 2016–17 में 55680 तक पहुँच गया। परन्तु यह वर्ष 2013–14 की तुलना में कम है। प्रत्येक जनपद की बात की जाये तो गौतमबुद्धनगर में इन समितियों की संख्या सर्वाधिक अर्थात् 17 है। परन्तु दूसरी तरफ बागपत जनपद में इनकी संख्या सबसे कम अर्थात् 2 ही है। अन्य जनपदों में भी इन समितियों की संख्या काफी कम है।

उत्पादित वस्तुओं का कुशल विपणन न होने का परिणाम यह होता है कि कारीगर काम के प्रति उदासीन हो जाता है। उसकी फिर यही धारणा शेष रह जाती है "जैसा पैसा वैसा काम"। वह जानबूझकर काम में जल्दबाजी करता है परिणामस्वरूप उत्पादित माल की किस्म घटिया होने लगती है। आगे चलकर बिक्री पर विशेष रूप से विदेशी मण्डियों पर इसका प्रभाव ओर भी बुरा पड़ता है। इससे कला कारीगरी में उत्तरोत्तर ह्रास होता रहता है। कारीगरों की नैतिकता भी गिर जाती है और साथ ही मण्डी का क्षेत्र भी संकुचित होने लगता है।

इन उद्योगों की वस्तुएँ भी प्रमाणित नहीं होती अतः प्रत्येक वस्तु का अलग–अलग मूल्य लगाया जाता है। इनके पास ग्राहकों की बदलती हुई रूचि का पता लगाने का कोई साधन नहीं होता है। परिणामस्वरूप रूचि बदलने पर कम मूल्य पर वस्तुओं को बेचना पड़ता है। इनके विज्ञापन के साधन भी सीमित होते हैं। वृहद उद्योगों से प्रतियोगिता होती है। कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित माल के विक्रय के विषय में भी राजकीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट संगठनों की जरूरत है।

इन उद्योगों के साधन इतने सीमित होते हैं कि ये विस्तृत स्तर पर विक्रय अथवा विज्ञापन व्यवस्थाओं को पूरा नहीं करा सकते हैं। जिन वस्तुओं में उन्हें मशीनी माल से प्रतियोगिता करनी होती है उनके विक्रय की व्यवस्था करना और कठिन हो जाता है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम इस विषय में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है और वह लघु उद्योगों को सरकार से आर्डर दिलाने में सहायता करता है। परन्तु यह स्वयं विपणन का दायित्व नहीं लेता। बिक्री की गारंटी लेने के उद्देश्य से

सरकार लघु फर्मों द्वारा बेचे गये पदार्थों में से कुछ पर 15 प्रतिशत तक का अधिमान देती है। निःसंदेह लघु उद्योगों के पदार्थों में डिजाईन की मौलिकता रहती है, पर इससे बाजार की अपूर्णता उत्पन्न होती है जिससे चिन्हित और विज्ञापित वस्तओं को लाभ पहुँचता है। अतः यह और भी आवश्यक है कि सरकार उन पदार्थों का प्रचार करने तथा उत्पादकों और व्यापारियों को एक दूसरे के निकट लाकर उक्त अपूर्णताओं को समाप्त करने का प्रयत्न करें।

तकनीकी एवं यांत्रिक शिक्षा का अभाव

ग्रामीण उद्योगों के आधुनिकीकरण का उद्देश्य उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि कारीगरों को उचित प्रशिक्षण न दिया जाये। वर्तमान में बाजार की नवीन व आधुनिक वस्तु का निर्माण तकनीकी एवं यांत्रिक शिक्षा के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकता। इसके लिए निरन्तर अनुसंधान करते रहना भी आवश्यकता है ताकि उत्पादन के नये–नये तरीकों एवं उत्तम डिजाइनों का समावेश किया जा सके। इन उद्योगों को उच्च स्तरीय कुशल एवं प्रशिक्षित तकनीकी कार्मिक न भली प्रकार मिल पाते हैं और न ही स्थायी तौर से मन लगातार काम करते हैं। फलस्वरूप उत्पादन की गुण–कोटि, रूप, रंग, डिजाइन आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकता है जिसकी परम आवश्यकता है।

निम्न तालिका से यह और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण मण्डल में औद्योगिक प्रशिक्षण की ओर सरकार का कोई विशेष ध्यान नहीं रहा है। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण मण्डल में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान भी पर्याप्त मात्रा में नहीं है।

तालिका 1.3

मेरठ मण्डल में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (प्रति 10 लाख जनसंख्या पर)

वर्ष	मेरठ	गाजियाबाद	बुलन्दशहर	गौतमबुद्धनगर	बागपत	मण्डल
2013–14	1	1	2	2	1	1
2014–15	1	1	2	1	1	1
2015–16	1	1	2	1	1	1
2016–17	1	1	2	1	1	1
2017–18	1	2	3	3	2	2

स्रोतः साख्यिकी पत्रिका मेरठ मण्डल, वर्ष 2018, पृ0 सं0 8

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि मण्डल में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान नगण्य मात्रा में उपलब्ध है। मेरठ जनपद में 2013–14 में प्रशिक्षण संस्थान की संख्या 1 थी जो 10 लाख व्यक्तियों के ऊपर है जो काफी कम है। वर्ष 2015–16 में भी इनकी संख्या 1 ही थी अर्थात् इनमें कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई है।

स्वयं के शोध तथा अनुसंधान केन्द्र न होने के कारण इन उद्योगों में प्रायः निम्न गुणवत्ता के माल का मूल्य कम प्राप्त होने के कारण ये उद्योग और पुराने/घटिया डिजाइन वाली वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। ये उद्योग जानबूझकर घटिया किस्म का माल तैयार करने में लगे हैं। माल में मिलावट और धोखे का अंश बहुत बढ़ गया है। उन पर लिखा कुछ होता है लेकिन निकलता कुछ और है। इससे लोगों का विश्वास इन से काफी उठ गया है। परिणामस्वरूप देश विदेश की अनेक मण्डियाँ इनके हाथ से निकलती जा रही हैं। निश्चय ही हमारे इन उद्योगों के लिए यह एक बड़ा अभिशाप हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारे लघु और कुटीर उद्योगों की उन्नति हो तो इस बुराई को रोकना बहुत आवश्यक है। उद्योगों के गुण, कोटि म सुधार, नवीन तकनीकी को पूरा करने के उद्देश्य से तकनीकी एवं यांत्रिक शिक्षा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है तथा आवश्यकता इस बात की है कि लघु तथा कुटीर उद्योगों हेतु लोगों के लिए औद्योगिक शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वैज्ञानिक प्रगति का ये उद्योग भी लाभ उठा सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि कारीगरों को औद्योगिक शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्राप्त हो तभी आधुनिक तौर–तरीकों और उन्नत औजारों से लाभ उठाना सम्भव हो सकेगा।

कुशल प्रबन्ध तन्त्र का अभाव

एक सुनियोजित संगठित तंत्र किसी भी व्यवसाय को शिखर तक पहुँचने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इन उद्योगों का प्रबन्ध साधारणतया उनके मालिकों के हाथ में होता है, जिनमें प्रायः कुशल प्रबन्ध की निपुणता नहीं होती। समुचित ढंग का श्रम विभाजन न होने के कारण यहाँ विशिष्टीकरण के भिन्न लाभ उपलब्ध नहीं हो पाते। कुशल प्रशासनिक व्यवस्था एक व्यापक शब्द है जिसे आधुनिक औद्योगिक जगत में विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। संकुचित अर्थ में प्रशासनिक व्यवस्था में एक कुशल प्रबन्धक का सर्वोपरि स्थान है जो अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति है। इस

दृष्टि से जो व्यक्ति अन्य लोगों से कार्य कराने की क्षमता रखते हैं उन्हें ही प्रशासनिक व्यवस्था में रहना होता है। पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्पादन के विभिन्न साधनों में सम्बन्ध स्थापित करना होता है। उत्पादन के विभिन्न साधनो में भूमि, पूंजी व मशीन आदि गैर मानवीय साधन हैं, जबकि श्रम, साहस व प्रबन्धक अपने–अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं परन्तु इनका सही एवं लक्षित उपयेाग केवल कुशल प्रशासनिक व्यवस्था ही कर सकती है। भविष्य के लिए नियोजन, संस्था में संगठनात्मक ढांचे का निर्माण, व्यवसायिक क्रियाओं का निर्देशन व संचालन करना, उनमें आवश्यक समन्वय स्थापित करना तथा समस्त क्रियाओं पर नियन्त्रण रखना प्रशासन द्वारा सम्पन्न किया जाता है। एक उद्यम में कुशल प्रशासन का सम्बन्ध नीति निर्धारण करना, लक्ष्यों को निर्धारित करना तथा उस सीमाओं का निर्धारण करना है जिसमें प्रबन्धक एवं समस्म कर्मचारीगण कार्य करते हैं। व्यवसाय के वित्त सम्बन्धी निर्णय आदि भी प्रशासन को लेने होते हैं परन्तु भारत के ग्रामीण उद्योगों में कुशल प्रशासन का अभाव है। किसी भी औद्योगिक उपक्रमों की सफलता उच्च प्रबन्धीय वर्ग की योग्यता, दक्षता तथा कुशलता पर निर्भर करती है। भारत में कुछ चुने हुए बड़े उद्योगपतियों को छोड़कर सामान्यतः उच्चे प्रबन्धकीय योग्यता का अभाव रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों में नियोजन, संगठन, नियन्त्रण, निर्देशन, निष्कर्षण आदि प्रबन्धकीय शब्दों का प्रयोग न के बराबर किया जाता है। इसी कारण ये सुव्यवस्थित संगठित उद्योगों के सामने अधिक समय तक टिक पाने में अक्षम पाये जाते हैं। सही प्रबन्ध न होने के कारण ही सार्वजनिक क्षेत्र में भारी विनियोजन के बावजूद लाभदायकता का अभाव, लघु उद्योगों में भी विशेष ध्यान देने पर भो विभिन्न योजनाओं में इस हेतु उपयुक्त आवंटन करने के उपरान्त यह उद्योग इतना कारगर न होना, इस तथ्य का प्रमाण है।

बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा

लघु एवं कुटीर उद्योगों के सामने एक कठिनाई यह भी रहती है कि इन्हें बड़े उद्योगों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है जिसका सामना करने में ये अपने को हमेशा असमर्थ पाते हैं। बड़े उद्योग वैज्ञानिक ढंग से संगठित होते हैं और उत्पादन, विपणन आदि क्षेत्रों में आधुनिक विधियों का प्रयोग करते हैं। अतः इन्हें अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं, और कुछ को सरकारी संरक्षण भी प्राप्त है। इन अनेक बातों के प्रभाव से इनकी उत्पादन लागत कम बैठती हैं, और इनको माल भी अधिक श्रेष्ठ, सस्ता और मानकीकृत होता है। निःसंदेह लघु और कुटीर उद्योगों को इन बड़े उद्योगों के सामने टिक पाना कठिन होता है।

लघु उद्योगों का देश के आर्थिक विकास में सर्वोच्च महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी इन्हें प्रतियोगिता जैसी बड़ी समस्या का सामना करना पड़ रहा है जो इनके भविष्य के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। जो निम्नलिखित हैंः–

1. लघु उद्योग एवं बड़े उद्योगों में समन्वय न होना इस क्षेत्र की कठिनाइयों का एक प्रमुख कारण है। किसी भी वस्तु के उत्पादन का बाजार लाने पर लघु उद्योगों को वृहद स्तरीय उद्योगों के उत्पाद का सामना करना पड़ता है, जहाँ पर लघु उद्योग निश्चित रूप से पिछड़ जाते हैं। ऐसी अवस्था में मूल्य निर्धारण एवं बाजार में वस्तु का प्रचलन बनाये रखने हेतु दोनों क्षेत्रों में समन्वय होना नितान्त आवश्यक है।
2. बड़े उद्योग एवं छोटे पैमाने के उद्योगों की सापेक्ष भूमिकाओं के बारे में अनिश्चिता भी छोटे उद्योगों को हानि पहुंचाने का कारण है। इन भूमिकाओं का सिद्धान्ततः तो निर्धारण किया जा सकता है, किन्तु सिद्धान्ततः भी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ–साथ भूमिकाओं में फेर बदल करते रहते हैं जिससे अधिक कठिन कार्य इन भूमिकाओं को ठोस रूप देना है।
3. बड़े उद्योग का उत्पादन अनिश्चित सीमा तक होना भी लघु उद्योगों हेतु समस्या का कारण बनता है जिससे बाजार की मांग की पूर्ति बड़े उद्योग कर देते हैं तथा छोटे स्तर के उत्पादों को विपणन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
4. मूल्य निर्धारण की मुख्य समस्या छोटे उद्योगों के सामने बड़े उद्योगों के द्वारा ही दी जाती है क्योंकि छोटे उद्योगों की अपेक्षा बड़े उद्योगों में निर्मित उत्पाद की लागत कम होती है जिस कारण छोटे उद्योगों का मार्जिन कम होता है।
5. अनुसंधान कार्यक्रम तथा बाजार में परिवर्तन का पता पहले बड़े उद्योग आसानी से लगा देते हैं। लघु उद्योग अपने पुराने तरीके से निर्मित वस्तु को प्रस्तुत करते हैं जो कि बाजार प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाता है।
6. इन उद्योगो हेतु बाजार का संकुचित क्षेत्र ही प्राप्त होता है। जबकि बड़े उद्योग अपने उत्पाद को व्यापक बाजार में अपनी पहुंच, प्रभावी विज्ञापन, उत्तम ट्रेडमार्क आदि के जरिये छोटे उद्योगों को बहुत पीछे छोड़ जाते हैं।
7. उत्पादों की प्रक्रिया का आवंटन भी ग्रामीण उद्योगों हेतु बड़े उद्योगों की अपेक्षा अधिक होना चाहिए। एक उत्पाद को भिन्न–भिन्न प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है, जिसमें से कुछ प्रक्रियाएँ लघु उद्योगों द्वारा सम्पन्न की जाती है तथा ठीक कुछ ऐसी ही प्रक्रिया बड़े उद्योगों के द्वारा भी की जाती है जिस कारण उत्पादित तकनीक आदि में बड़े उद्योगों का सामना करना पड़ता है जैसे वस्त्र उद्योग में कताई का कार्य बड़े एवं छोटे दोनों उद्योग सम्पन्न कर

सकते हैं। ऐसी स्थिति में लघु उद्योगों द्वारा निर्मित माल में बड़े अत्याधुनिक उद्योग के माल से प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है जिसमें निश्चित रूप से यह क्षेत्र पिछड़ता हुआ नजर आयेगा।

8. आयात एवं निर्यात के क्षेत्र में भी ग्रामीण उद्योग को बड़े उद्योगों के द्वारा निर्मित माल से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। अतः लघु उद्येगों का समुचित विकास सुनिश्चित करने के लिये यह अनिवार्य है कि इन सम्बन्धों तथा इन उद्योगों की अपनी–अपनी भूमिकाओं को किसी तर्कसम्मत वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया जाए। इस प्रकार लघु एवं बड़े उद्योगों के बीच समन्वय स्थापित किया जायेगा तो देश का उत्पादन भी बढ़ेगा, विकास भी होगा और बेरोजगारी का उन्मूलन भी हो सकेगा।

श्रम की समस्या

ग्रामीण उद्योग श्रम प्रधान उद्योग ह इन उद्योगों में पूंजी की तुलना में श्रम की मात्रा का अधिक निवेश होता है। इन उद्योगों की सफलता कार्य में लगे व्यक्तियों पर निर्भर करती है। ग्रामीण उद्योगों में श्रम का विशेष स्थान होने के बावजूद इन्हें श्रम से सम्बन्धित अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

ग्रामीण उद्योगों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या **श्रम की उपलब्धता** में कमी है। प्रायः ग्रामीण उद्योगों में पूंजी का निवेश कम किया जाता है। फलस्वरूप लाभ की मात्रा भी कम पाई जाती है। ये उद्योग अपने श्रमिकों को शहरों में लगे उद्योगों तथा बड़े उद्योगों की तरह अधिक मजदरी नहीं देते हैं, ये उद्योग श्रमिकों को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल रहते हैं। अधिकतर श्रमिक शहरों में अधिक मजदूरी मिलने के कारण शहरों की ओर अधिक आकर्षित होकर वहीं रहना पसन्द करते हैं।

ग्रामीण उद्योगों में **श्रमिक कम पढ़े लिखे तथा अप्रशिक्षित** हाते हैं। ये उद्योग अपने कर्मचारियों को पारिश्रमिक अधिक भुगतान नहीं कर सकते। अतः इन उद्योगों में अधिक पढ़ा लिखा तथा प्रशिक्षित श्रमिक कार्य करने के लिए तैयार ही नहीं होता और जो श्रमिक इन उद्योगों में कम वेतन में काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं वे कम पढ़ लिखे तथा अप्रशिक्षित होते हैं। अप्रशिक्षित श्रमिकों से काम कराये जाने के परिणामस्वरूप उत्पादन की मात्रा तथा गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। परन्तु पूंजी के अभाव के कारण इन उद्योगों को इन अप्रशिक्षित तथा अनपढ़ श्रमिकों से काम चलाना पड़ता है।

इन उद्योगों मे उद्यमी यदि अपने उद्योगों को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रशिक्षण लेना चाहे तो इन इलाकों में **पर्याप्त प्रशिक्षण केन्द्रों का अभाव** है। जो प्रशिक्षण केन्द्र उपलब्ध भी हैं तो उनकी पहुंच से बहुत दूर स्थापित हैं जहाँ वह चाहकर भी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाता है। ग्रामीण उद्योगों के उद्यमी कम पढ़े लिखे होने के कारण इन्हें पूर्ण रूप से सभी तथा सही प्रशिक्षण केन्द्रों की जानकारी प्राप्त नहीं है। अनेक ग्रामीण इलाके तो ऐसे हैं जहाँ दूर–दूर तक कोई प्रशिक्षण केन्द्र उपलबध ही नहीं है। ऐसी अवस्था में वहाँ के इच्छित व्यक्तियों को दूर दराज के इलाकों या शहरों की ओर प्रस्थान करना पड़ता है जो इनके लिए काफी महँगी तथा कठिन यात्रा होती है। ऐसी स्थिति में वे हताश होकर बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये ही अपने उद्यम को चलाते हैं।

वर्तमान में सरकार ने **श्रमिकों की सुरक्षा के लिए अनेक कठार कानून** बनाये हैं जिनका प्रत्यक्ष लाभ श्रमिकों को प्राप्त होता है परन्तु ग्रामीण उद्योगों को इन श्रम कानून के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। बड़े उद्योग तो सभी श्रम कानूनों को भली भांति पूरा करने की स्थिति में होते हैं। परन्तु इन उद्योगों में पूंजी का अभाव होने के कारण ये सभी सुविधायें श्रमिकों को उपलबध नहीं करवा सकते जो श्रम कानूनों के अन्तर्गत दी गयी है। अतः इन उद्योगों को अनेक बार सरकार की कानून व्यवस्था की मार झेलनी पड़ती है जिसके कारण ये उद्यमी या तो अपना उद्योग बन्द कर देते हैं या अपने श्रमिकों को सुविधा उपलबध करवाने की होड़ में लगातार कर्जों में डूबते जाते हैं।

इन उद्योगों को उपलब्ध कर्मचारियों के बीच **आपसी संघर्ष तथा हड़ताल** जैसी समस्याओं का सामना कना पड़ता है। इन उद्योगों में लगे श्रमिक कम पढ़े लिखे होते हैं। जो छोटी–छोटी बातों पर शीघ्र ही आपस में मतभेद कर बैठते हैं। यदि संघर्ष उद्यमी तथा कर्मचारियों के बीच हो तो श्रमिक हड़ताल को मुख्य हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण उद्योगों पर श्रमिकों के आपसी संघर्ष तथा हड़ताल के काल साये हमेशा मंडराते रहते हैं जो इन उद्योगों के उद्यमियों के लिए लगातार चुनौती का विषय बना रहता है।

इन उद्योगों के **श्रमिकों में स्थिरता की कमी** पाई जाती है। कम वेतन तथा कम सुविधा उपलब्ध होने के कारण मजदूर अधिक समय तक इन उद्योगों में नहीं टिकते वे अधिक वेतन की तलाश में कहीं ओर चले जाते हैं। जो श्रमिक इन श्रमिकों की जगह लाये जाते हैं वे काम को सीखने में समय तथा साधनों का अपव्यय करते हैं। कार्य को सीखते हुए किये गये उत्पादन की गुणवत्ता में कमी पाई जाती है। जो बाजार में उद्योग को अधिक लाभ नहीं दिलवा पाती। प्रायः उद्योग में सन्तुष्ट न होने के कारण अर्थात् कम वेतन तथा पूर्ण सुविधाओं के अभाव के कारण ही श्रमिक उद्योग का छोड़ देते हैं। जिससे उत्पादन क्षमता में कमी आती है और फलस्वरूप उद्योग को हानि का सामना करना पड़ता है।

ग्रामीण उद्योगों को अक्सर **राजनैतिक हस्तक्षेप का भी सामना करना** पड़ता है। राजनैतिक हस्तक्षेप प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के कार्यों को और अधिक मुश्किल बना देता है तथा जिसका उनके मनोबल पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। कई पदों पर चुनाव कुशलता तथा योग्यता के आधार पर न होकर राजनैतिक आधार पर होता है। परन्तु इनमें से कई कुशल प्रबन्धक सिद्ध नहीं होते जिसका भुगतान इकाई को करना पड़ता है। ग्रामीण उद्योगों को एक अन्य राजनैतिक मार भी झेलनी पड़ती है। ग्रामीण उद्योग बड़े उद्योगों की तुलना में छोटा आकार होने के कारण राजनेताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते। अतः इनके छोटे आकार के कारण इनकी महत्ता को कम आंकते हुए राजनेताओं द्वारा इनके प्रति पक्षपात की नीति अपनाई जाती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भारत का आर्थिक विकास अत्यन्त निम्न स्तर का था। उद्योगों की संवृद्धि दर बहुत निम्न थी तथा औद्योगिक संरचना का ढांचा बहुत छोटा था इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात यद्यपि कुटीर एवं लघु उद्योगों को प्राथमिकता दी गई परन्तु इनके बावजूद ये उद्योग अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सके। इन उद्योगों की वास्तव में कुछ आधारभूत समस्याएँ हैं जिनको हल किये बिना इनकी सफलता की आशा करना निरर्थक होगा। इन उद्योगों की कुछ मुख्य समस्याएँ एवं कठिनाईयाँ वर्णित कर दी गई हैं परन्तु कुछ अन्य समस्याओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः–

लघु उद्योगों का प्रादेशिक वितरण–किसी भी देश का आर्थिक एवं औद्योगिक विकास तक तक अपूर्ण माना जायेगा जब तक कि उद्योगों का विकास संतुलित आधार पर न किया जाए। औद्योगिक क्षमता और उत्पादन–वृद्धि जैसे आर्थिक दृष्टिकोणों के अलावा, समाजवादी और कल्याणकारी राज्य की स्थापना की दृष्टि से उद्योगों का विकास और उनका वितरण सम्पूर्ण देश में समान रूप से होना चाहिए, ताकि समाज के सभी वर्ग अथवा क्षेत्र समान रूप से लाभान्वित हो सके। योजना आयोग के शब्दों में "उद्योगों के प्रादेशिक वितरण से आशय उद्योगों को सम्पूर्ण देश के कोने–कोने में स्थापित करने, आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप होने वाले लाभों को अपेक्षाकृत कम विकसित क्षेत्रों में समान रूप से वितरण करने तथा देश के प्रत्येक नागरिक को राष्ट्रीय आय का उचित भाग उपलबध कराने से है।" परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों का दुर्भाग्य है कि यहाँ प्रादेशिक वितरण न्यायपूर्वक नहीं हो पाया है। बड़े उद्योगों का अत्यधिक विकास किया गया परन्तु इन उद्योगों को कोई विशेष सुविधा प्राप्त नहीं हो सकी। प्रादेशिक रूप से असमान वितरण की समस्या इन उद्योगों की समस्याओं को अधिक जटिल बनाने में एक कारक सिद्ध हुई है।

औद्योगिक नियोजन तकनीकी की समस्या–भारत के ग्रामीण उद्यमों में औद्योगिक नियोजन में तकनीकी की समस्या भी महत्वपूर्ण है। तकनीकी की दृष्टि से दो प्रकार की तकनीकी को औद्योगिक नियोजन में अपनाया जा सकता है–(अ) श्रम–प्रधान तकनीक (ब) पूंजी–प्रधान तकनीक। औद्योगीकरण की तीव्र गति की दृष्टि से पूंजी प्रधान तकनीक आवश्यक होती है, लेकिन भारत में जहाँ एक ओर श्रमिकों का बाहुल्य है और दूसरी ओर पूंजी का अभाव है, ग्रामीण उद्योगों में पूंजी के अभाव के कारण श्रम–प्रधान तकनीक का भी जोरदार समर्थन किया जाता है जो बड़े उद्योगों की पूंजी प्रधान तकनीक के आगे नहीं टिक पाते हैं।

सूचनाओं व परामर्शों का अभाव–इन उद्योगों को अपने व्यवसाय से सम्बन्धित सूचनाएँ उचित समय पर नहीं मिल पाती हैं। साथ ही इन्हें उचित परामर्श देने वाली संस्थाएँ भी कम हैं। इन दोनों बातों के अभाव में यह क्षेत्र अपनी उन्नति नहीं कर पा रहे हैं। आज के इस औद्योगिक युग में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सूचना प्राप्त करना उद्यमियों के प्रमुख कार्यों में शामिल किया जाता है।

विज्ञापन की कमी–बड़े उद्योग विज्ञान की मदद से बाजार के बड़े हिस्से पर अधिपत्य स्थापित कर लेते हैं परन्तु इन उद्योगों के पास विज्ञापन के साधन सीमित होते हैं। प्रायः पूँजी के अभाव के कारण ये उद्योग अपनी वस्तुओं का विज्ञापन बड़े स्तर पर नहीं कर पाते, परिणामस्वरूप बाजार का छोटा हिस्सा ही इन्हें प्राप्त होता है।

यातायात के साधनों का अभाव–ग्रामीण उद्योग प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होत हैं या देश के पिछड़े क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन उद्योगों के पास अपने स्वयं के यातायात साधन उपलब्ध नहीं होते हैं। कच्चे तथा निर्मित माल के आवागमन के लिए इन उद्योगों को रेल या सड़क यातायात का सहारा लेना पड़ता है जिनका किराया अधिक होने के कारण इनकी लागत अधिक बढ़ जाती है परिणामस्वरूप इन्हें कम लाभ में ही सन्तोष करना पड़ता है।

विक्रय कला की जानकारी का अभाव–बड़े–बड़े उद्योग विक्रय कला की मदद से बाजार में मांग उत्पन्न कर अपने लाभ को और अधिक बढ़ा लेते हैं। वे इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की सहायता लेते हैं। परन्तु

ग्रामीण उद्योगों के पास विक्रय कला की कोई विशेष जानकारी नहीं होती जो विक्रय कला द्वारा मांग को उत्पन्न कर लाभ में वृद्धि कर सकें। अप्रयुक्त क्षमता एवं उनके मंहगे उत्पादों पर पूर्णतः आवश्यकता इस तथ्य की है कि वे अपने उद्योगों से कैस अधिक से अधिक सस्ते उत्पाद प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार भारत के ग्रामीण उद्योग उपरोक्त अन्य समस्याओं से ग्रसित हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रयत्न किये गये हैं परन्तु सफलता न मिलने के कारण ये समस्यायें आज भी बनी हुई हैं। सरकार, संस्थायें, उत्पादक तथा उपभोक्ता यदि मिलकर समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करें तो समस्यायें दूर होकर ग्रामीण उद्योग देश तथा समाज के हित में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं। सरकार द्वारा इन उद्योगों को प्राथमिकता के आधार पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहायता दी जाती है, तथा विनियोजित ढंग से उनकी कठिनाईयों को दूर करने का प्रयास किया जाता है परन्तु दुर्भाग्यवश अभी यह क्षेत्र आशातीत सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। आज के भौतिक एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक युग में विश्व का प्रत्येक देश अपने विकास के लिए प्रत्यनशील है। विशेष रूप से तीव्र औद्योगीकरण सभी देशों की प्रथम आवश्यकता है जिसे हर कीमत पर प्राप्त करना हम सभी लोगों का प्राथमिक लक्ष्य बन चुका है।

निष्कर्ष

1. देश में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से प्रारभ हुई है, पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन से नहीं, जिसके परिणामस्वरूप देश मे पूँजी के स्रोतों में कमी है तथा विदेशी पूँजी व तकनीकी सहयोग भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। औद्योगिक विकास धीमी गति से होने का कारण साधनों में गतिशीलता का अभाव, मूल्यों में अस्थिरता और विशिष्टीकरण के अभाव अर्थात् बाजार की अपूर्णता भी है।
2. भारत जैसे विकासशील देश में राजनैतिक अस्थिरता हमेशा बनी रहती है जिसके कारण औद्योगिक विकास की गति धीमी रही है। देश में प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण, बचतों की कमी रहती है। किसी देश का औद्योगिक विकास केवल प्राकृतिक साधनों एवं पूंजी पर निर्भर नहीं करता, वरन् साहसी क्षमता का होना भी आवश्यक है, जो कि भारत में प्रायः कम देखने को मिलता है।
3. भारत में पूंजी बाजार का इस प्रकार से विकास हुआ है कि यह बड़े पैमाने के उद्योगों की आवश्यकताओं हेतु अधिक उपयुक्त बैठता है। नये शेयरों का निर्गमन, पुराने शेयरों का क्रय–विक्रय तथा उद्योगों की स्थापना और उनका संचालन आदि कार्य एक दूसरे से इतने गुंथ गये हैं कि केवल बड़े पैमाने के उद्योग ही पूंजी बाजार की विभिन्न संस्थाओं से लाभ उठा सकते हैं। एक अन्य कठिनाई मुद्रा बाजार का विकास इस प्रकार से हुआ है कि सामान्यता रूपये की सुरक्षा का सवाल पहले आता है और उद्योगों का उत्पादक स्वरूप गौण रह जाता है। इस अर्थ में छोटे पैमाने के उद्योगों की उधार पात्रता बहुत गिर जाती है। यही कारण है कि बड़े पैमाने के उद्योगों को जो अच्छी जमानत दे सकते हैं, उन्हें सरलता से उधार मिल जाता है, ब्याज की दर भी कम देनी पड़ती है।
4. उद्योगों के गुण, कोटि में सुधार, नवीन तकनीकी को पूरा करने के उद्देश्य से तकनीकी एवं यांत्रिक शिक्षा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है तथा आवश्यकता इस बात की है कि लघु तथा कुटीर उद्योगों हेतु लोगों के लिए औद्योगिक शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वैज्ञानिक प्रगति का ये उद्योग भी लाभ उठा सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि कारीगरों को औद्योगिक शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्राप्त हो तभी आधुनिक तौर–तरीकों और उन्नत औजारों से लाभ उठाना सम्भव हो सकेगा।
5. चमड़ा उद्योग, रेशम उद्योग एवं लाख उद्योगों में उद्यमी यदि अपने उद्योगों को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रशिक्षण लेना चाहे तो इन इलाकों में **पर्याप्त प्रशिक्षण केन्द्रों का अभाव** है। जो प्रशिक्षण केन्द्र उपलब्ध भी हैं तो उनकी पहुंच से बहुत दूर स्थापित हैं जहाँ वह चाहकर भी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाता है। ग्रामीण उद्योगों के उद्यमी कम पढ़े लिखे होने के कारण इन्हें पूर्ण रूप से सभी तथा सही प्रशिक्षण केन्द्रों की जानकारी प्राप्त नहीं है।
6. प्रशिक्षण की ट्राइसेम योजना एक अच्छी योजना है लेकिन विभिन्न कलाओं में प्रशिक्षण के लिए सेवा योजन निदेशालय प्राविधिक शिक्षा विभाग भी केन्द्र संचालित कर रहा है। अतः दोनों योजनाओं में एकरूपता होनी चाहिए। प्रशिक्षण में किसी को उत्तरदायी नहीं बनाया गया है।
7. बहुत ही कम मात्रा में इकाइयों ने वित्त सुविधा का लाभ उठाया है। इस सुविधा का लाभ न उठा पाने के कई कारण हैं जिनमें प्रमुख हैं प्रचार की कमी, जिला उद्योग केन्द्रों द्वारा न रुचि लेना किस्तों की वसूली में सहयोग न देना और साथ ही निगमों की भारी औपचारिकताएँ।
8. स्थिर कीमतों पर उत्पादन के साथ विभिन्न चरों के सहसम्बन्ध को दर्शाया गया है। जिसमें सहसम्बन्ध का अंश अत्यधिक धनात्मक संख्या में आता है जबकि निर्यात और उत्पादन में यह आशा के अनुरूप नहीं है। इस सम्बन्ध को चित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है जिसमें उत्पादन, रोजगार व निर्यात एक दूसरे के विरोधाभास को प्रदर्शित करते हैं परन्तु साथ ही कुटीर उद्योग लघु उद्योगों के लिये एक आधार का कार्य कर रहे हैं। जिन्होंने कुटीर उद्योगों के

साथ–साथ लघु उद्योग व सेवा क्षेत्र में उत्पादन व निर्यात को, उत्पादन व रोजगार को सकारात्मक दिशा प्रदान की है।

सुझाव

1. सूक्ष्म साख को बढ़ावा देने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का मेरठ मण्डल में तीव्र विकास होना चाहिए।
2. सेमिनारों में उठाये गये प्रश्नों पर निर्णय लेने एवं उन निर्णयों को राज्य स्तर पर लागू करने के लिए निदेशालय स्तर पर एक समिति गठित की जानी चाहिए और इस समिति को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
3. सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा कुटीर उद्योगों के लिए आधारभूत ढाँचा तैयार किया जाना चाहिए जिसमें बिजली, पानी, सूचना के साधन व यातायात व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिए।
4. सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में समय–समय पर कुटीर उद्योगों से सम्बन्धित प्रदर्शनी लगानी चाहिए। साथ ही कुटीर उद्योग के उत्थान के लिए साहसियों को पुरस्कार की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. पर्याप्त मात्रा में समय से कुटीर उद्योगों को बजट उपलब्ध कराया जाना चाहिए। जिला उद्योग केन्द्रों से जनपद स्तर पर समस्त अधिकार देते हुए कार्यदशाओं में व्यापक सुधार के प्रयास किये जाने चाहिए।
6. यदि कोई साहसोद्यमी साहस के साथ आगे आकर जिला उद्योग केन्द्र से सम्पर्क स्थापित करता है तो जिला उद्योग केन्द्र को चाहिए कि उसे कुछ भी करना पड़े लेकिन वह उद्यमी को हतोत्साहित न होने दें। जिला उद्योग केन्द्र को विनियोग से पूर्व तो सहायता करनी ही है लेकिन विनियोग की अवस्था तथा विनियोग के बाद के अवस्था में भी सहयोग करना चाहिए।
7. गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यापन करने वालों के लिए संचालित एकीकृत ग्राम्य विकास योजना को अब वित्तीय सहायता बन्द कर देनी चाहिए। इसके स्थान पर हस्तकला उद्योगों को बढ़ावाा देकर उनके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सकेन्द्रण के आधार पर कच्चे माल का डिपों तथा निर्मित माल की ब्रिकी के ग्रामीण डिपों खोले जाने चाहिए।
8. शिक्षित बेरोजगार नवयुवकों के लिए स्वतः रोजगार योजना उचित योजना है अतः इसे लागू रखा जाना चाहिए लेकिन याजना में सुधार करते हुए अभ्यर्थी की आयु 25 से 40 वर्ष, परिवार की आये रू0 50,000 वार्षिक तथा वित्तीय सहायता की सीमा रू0 1,00,000 रखी जानी चाहिए।
9. उद्योग की स्थापना को प्रोत्साहित करेन के लिए जितनी भी उत्पादन /छूट की योजनांए कार्यरत हैं वे उचित हैं। लेकिन जब उद्योग पूर्णरूप से लाभ कमाने की स्थिति में आ जाते है तो इन धनराशियों की वसूली उद्योगों के लाभों मे से की जानी चाहिए।
10. सामान्य जनता में उद्योगों के प्रति रूचि उत्पन्न करने एवं जानकारी देने के लिए उद्यमिता विकास योजना तथा सेमिनार योजना ठीक है। लेकिन विकसित प्रदेशों मे उद्यमियों के भ्रमण की व्यवस्था की जानी चाहिए क्योंकि पढ़ने या सुनने की अपेक्षा चलते हुए उद्योग को देखने से प्रेरणा अधिक मिलती है।
11. लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना से उनके लगातार अनुश्रवण की व्यवस्था जिला उद्योग केन्द्र स्तर पर की जानी चाहिए। यदि कोई इकाई बीमार होने जा रही है तो उसके बीमार होने के कारण का तत्परता से पता लगाकर उस कारण पर नियन्त्रण किया जाए जिसके कारण वह इकाई बीमार होने जा रही है। जिला उद्योग केन्द्र को स्थल पर ही निर्णय के अधिकार दिये जायें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हसबैण्ड एण्ड डाकरे, इन्ट्रोडक्शन टु बिजनेस फाइनेन्स, 1987, सेज पब्लिकेशन
2. हाबार्ड एण्ड उपटोन, मॉर्डन कॉरपोरेशन फाइनेन्स, , सेज पब्लिकेशन, 1987
3. आर्थिक सर्वेक्षण 2017–18, भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक खण्ड द्वारा आक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस से प्रकाशित
4. जी॰ रामचन्द्रन, ग्रोथ ऑफ स्मॉल सेक्टर इकोनोमिक टाइम, अप्रैल 22, 1986
5. सी॰ वी॰ कुप्युस्वामी, स्मॉल यूनिट्स माइल्स टू गो फाइनेन्शियल एक्सप्रेस
6. फ्लोटेन्स, पी0 एम0, इकोनोमिक्स एण्ड सोशियोलॉजी ऑफ इण्डस्ट्री, 2006
7. होस्मर, एल0 एस0, दि इन्टरप्रिन्योरियल फंक्शन प्रेन्टिस हॉल न्यू जर्सी, 1977
8. लघु उद्योग विकास विभाग भारत सरकार, ए हैण्डबुक फॉर एक्सटेन्सिव सर्विसेज
9. समाजर्थिक समीक्षा, वर्ष 2016 मेरठ मंडल मेरठ
10. सांख्यिकीय पत्रिका, वर्ष 2016 मेरठ मंडल मेरठ
11. आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार
12. बी0 लालू, स्मॉल इण्डस्ट्रीज मैनेजमेन्ट दि बैंकर, सितम्बर 1991
13. जी0 रामचन्दन, ग्रोथ ऑफ स्मॉल सेक्टर इकोनोमिक टाइम, अप्रैल 22, 1986